प्रगतिवादी आलोचना और प्रेमचन्द

अजय कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

राष्ट्रीय पी0जी0 कालेज

सुजानगंज, जौनपुर

मो0 : 9452961554

E-mail : ajay.dahev@gmail.com

प्रेमचन्द द्वारा 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष पद को स्वीकार करना महज खानापूर्ति नहीं थी। जब लंदन में 'The Indian Progressive Writers Association' की स्थापना हुई तो प्रेमचन्द ने इसका 'हृदय से स्वागत' किया और उसके मेनिफेस्टो का प्रकाशन 'हंस' में किया। इस मैनिफेस्टो के विषय में उन्हेने लिखा कि– "उसे देखकर यह आशा है कि अगर यह सभा अपने इस नए मार्ग पर जमी रही तो साहित्य में नव युग का उदय होगा।" और यह भी कि 'हंस' भी इन्ही उद्देश्यों के लिए जारी किया गया है।' '

मार्च, 1930 में प्रेमचन्द ने 'हंस' निकालना आरम्भ किया और अगस्त, 1932 से 'जागरण' नामक साहित्यिक–पत्र का प्रकाशन शुरू कियां। लेखक–संपादक प्रेमचन्द अपने राजनीतिक–सामाजिक विचारों को खुलकर इसमें व्यक्त करते थे। प्रेमचन्द के अधिकतर वैचारिक लेख इन्ही पत्रिकाओं के संपादकीय के रूप में प्रकाशित हुए।मनोरंजन को वे साहित्य रचना का एक प्रधान उद्देश्य मानते हैं और 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का समर्थन करते हैं 'समालोचना' के, जनवरी 1925 के अंक में प्रकाशित 'उपन्यास–एक' शीर्षक लेख में प्रेमचन्द लिखते है–

"साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श वह है जबकि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाय। Art for Art's Sake के सिद्धान्त पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।"२

इसी लेख में उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की मान्यता को प्रतिपादित किया है परन्तु उसमें भी उनका झुकाव आदर्शवाद की ओर अधिक है। यथार्थवाद को वे सन्देह की दृष्टि से देखते है। उनकी नजर में यथार्थवादी चरित्र की कमियों को नग्न रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। जिसका पाठकों पर गलत प्रभाव पड़ता है। वे लिखते हैं–

'Realist अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता हे और चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की प्रधानता है, यहाँ तक कि उज्ज्वल से उज्जवल चरित्र में भी कुछ दाब–धब्बे रहते हैं, इसलिए Realism हमारी दुर्बलताओं, हमारी विशमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। वास्तव में Realism हमको Pessimist बना देता है,

मानव चरित्रों पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।"3

प्रेमचन्द ने उपन्यास का मूल तत्त्व 'मानव– चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना' बताया और उसका मुख्य उद्देश्य 'मनोरंजन के साथ आत्म–परिष्कार' कहा। लेकिन उन्होंने मनोरंजन को साहित्य का मूल उद्देश्य कभी घोषित नही किया।

मार्च–अप्रैल, 1906 की उर्दू मासिक पत्रिका उर्दू–ए–मुअल्ला में प्रकाशित उर्दू लेख 'शरर और शहरयार' प्रेमचन्द के आरम्भिक आलोचनात्मक लेखों में से एक है। इसमें उर्दू के दो उपन्यासकारों शरर और सरशार के उपन्यासों पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने उपन्यास के यथार्थवादी–शिल्प की आरम्भिक रूपरेखा प्रस्तुत कर दी है। नॉवेल की परिभाषा देते हुए उन्होंने लिखा–

"नॉवेल उस किस्से को कहते हैं जो उस जमाने को, जिसका कि वह जिक्र कर रहा है, साफ–साफ तसवीर उतारते और उसके रीति–रिवाज, अदब–कायदे, रहन– सहन के ढंग वगैरह पर रोशनी डाले और अलौकिक घटनाओं को स्थान न दे या अगर दे तो उनका चित्रण भी इसी खूबी से करे कि जनसाधारण उनको यथार्थ समझने लगे।"4

सन् 1900 से लेकर 1920 तक का समय द्विवेदी युग के नाम से जना जाता है। बालकृष्ण भट्ट से शुरू हुई सच्ची समालोचना की परम्परा इस युग में रीतिवादी आग्रहों के बीच खोने लगी। देव और बिहारी की श्रेष्ठता के विवाद ने छिछली मूल्यांकनपरक तुलनात्मक आलोचना को जन्म दिया जिसमें आलोचना के मानदण्ड रस, अलंकार, काव्य–गुण आदि प्राचीन कसौटियाँ थीं। ये आलोचनाएँ समाज से कटी हुई व्यक्तिगत आग्रहों–दुराग्रहों से प्रेरित एक– दूसरे को नीचा दिखाने के लिए लिखी जाती थीं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस विषय में लिखा है–

द्वितीय उत्थान के भीतर समालोचना की यद्यपि बहुत कुछ उन्नति हुई पर उसका स्वरूप प्रायः रूढ़िगत ही रहा। कवियों की विशेषताओं का अन्वेषण और उनकी अन्तःप्रकृति की छानबीन करने वाली उच्च कोटि की समालोचना का प्रारम्भ तृतीय उत्थान में जाकर हुआ।"5

सन् 1912 से लेकर 1917 के कुल पाँच वर्शो में प्रेमचन्द ने भारत के प्राचीन साहित्य और साहित्यकारों पर अनेक लेख उर्दू में लिखे। इनमें प्रमुख हैं– रामायण और महाभारत (1912 ई.) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (1913 ई.) कालिदास की कविता (1914 ई.) पैके अब्र (1917 ई.) (यह मेघदूत की आलोचना है।), बिहारी (1917 ई.) और केशव (जुलाई, 1917 ई.)। कवियों की विशेषताओं का अन्वेशण और उनकी अन्तः प्रकृति की छान–बीन को शुक्लजी श्रेष्ठ आलोचना का अनिवार्य मानदण्ड मानते हैं और इसका दर्शन उनके हिन्दी गद्य के तृतीय उत्थान में मिलता है यानी सन् 1920 के बाद, लेकिन प्रेमचन्द के उपर्युक्त लेख इन्ही आधारों पर लिखे गये हैं। इन लेखों में व्याप्त सूक्ष्म आलोचनात्मक दृष्टि और विश्लेषणपरकता कई बार इसके अनुवाद पर ही सन्देह पैदा कर देता

है। कालिदास की कविता नामक निबन्ध तो लगभग दस पृष्ठों का है और ऐसा लगता है जैसे महावीरप्रसाद द्विवेदी के कालिदास की निरंकुशता (1911 ई.) के विश्लेषण को ही बागे बढ़ाता है। कालिदास की कविता पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है–

"कालिदास की कविता संक्षेप में कोमल भावनाओं और अलंकृत कल्पनाओं की कविता है।"6

प्रेमचन्द ने सम्भवतः पहली बार इसी लेख में कालिदास की तुलना शेक्सपीयर से की और इस तुलना के आधारों की ओर संकेत करते हुए लिखा–

"दोनों नाटककार हैं, दोनों मानव–हृदय के मर्मज्ञ। उनकी कल्पनाएँ उनकी बंदिशें बहुत जगहों पर लड़ गई हैं। एक ही कवि–मन प्रकृति की ओर से दोनों को मिला था। किसी चीज़ को जिस निगाह से शेक्सपीयर देखता है उसी निगाह से कालिदास भी उसे देखता है। व्यथा और शोक, निराशा और प्रतिशोध, प्रेम और वियोग में आदमी के दिल में कैसी भावनाएँ लहरें मारती हैं, इसको जिस खूबी से शेक्सपीयर ने दिखाया है;। वैसे ही कालिदास ने भी शेक्सपीयर के जितने कैरेक्टर हैं वह सब एक–दूसरे से भिन्न हैं। हर एक में कोई न कोई अपनी विशेषता है। कालिदास के कैरेक्टरों की भी यही स्थिति है। शेक्सपीयर के मैकबेथ, ओथेलो, रोमियो, जूलियट की तस्वीरों को कालिदास के दुष्यंत, शकुंतला, प्रियंवदा की तस्वीरों के मुकाबले में रखने से साफ मालूम हो जाता है कि इन दोनों कवियों को मनुष्य की प्रकृति का कैसा ज्ञान था। शेक्सपीयर और कालिदास में अगर कुछ अन्तर है तो यह है कि शेक्सपीयर को मानव–चरित्र के चमत्कार दिखाने में अधिक कौशल है और कालिदास को प्रकृति के चित्रण में। शेक्सपीयर को मानव–स्वभाव के भीतर जो पहुँच थी वही कालिदास को प्रकृति के चमत्कारों में थी। इसीलिए शेक्सपीयर का साहित्य गम्भीर है और कालिदास का रंगीन।" 7

तुलनात्मक आलोचना का यह बेहतरीन नमूना हे। शुक्लजी तुलनात्मक और निर्णयात्मक आलोचना की जिन विशेषताओं को तृतीय उत्थान में तलाश रहे थे वह प्रेमचन्द के आरम्भिक उर्दू लेखों में विद्यमान था।

प्रेमचन्द के साहित्य विवेक का निर्माण उनके संवेदनशील, ईमानदार और सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने वाले व्यक्तित्व के द्वारा हुआ। न वे भारतीय काव्यशास्त्र से प्रभावित हुए थे और न ही पाश्चात्य आलोचना पद्धतियों से आक्रान्त। भारतेन्दु–साहित्य की बहुत सारी उन खूबियों, खामियों की पहचान उन्होनें 1913 ई. में ही कर ली थी जिसका बाद में शुक्लजी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उल्लेख किया। भारतेन्दु के महत्त्व को प्रतिष्ठित करते हुए प्रेमचन्द ने अपने निबन्ध भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र में लिखा– "गद्य में तो उन्हें मार्गदर्शक का स्थान प्राप्त है और उनके हिन्दी गद्य की प्रौढ़ता, चुलबुलापन और शुद्धता प्रशंसनीय है। जिन्दादिली बाबू हरिश्चन्द्र का विशेष गुण थी और वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होती थी।"8

वास्तव में प्रेमचन्द साहित्य की स्वायत्तता के पक्षधर नहीं थे। वे रचनाओं के निर्माण और मूल्यांकन में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका को बहुत महत्व देते थे। 1936 ई. में कही गयी यह बात कि– साहित्य राजनीति

को मशाल दिखाता है कि जड़ें आरम्भिक जीवन से ही उनके भीतर विद्यमान थीं। साहित्य और समाज के अन्योन्याश्रय सम्बन्धों कि उन्हें खूब पहचान थी। साहित्य की सामाजिक भूमिका पर वे बहुत जोर देते थे।प्रेमचन्द ने जुलाई, 1917 में एक लेख लिखा– केशव। इस निबन्ध में विभीषण के चरित्र–निर्माण के आधार पर उन्होंने तुलसीदास की आलोचना की और केशवदास की प्रशंसा। प्रेमचन्द को यह अच्छा नहीं लगा कि विश्वासघाती विभीषण को केवल भगवत् प्रेम के कारण तुलसीदास ने अपने साहित्य में आदरणीय स्थान दिया। उन्हें तुलसीदास के रावण के चरित्र में भी तार्किकता और विश्वसनीयता का अभाव दिखा। भक्ति के आवेग में रामचरितमानस के चरित्रों को यांत्रिक बना देना प्रेमचन्द को पसन्द नहीं आया। तुलसी की तुलना में उन्हें केशवदास के चरित्र ज्यादा यथार्थ लगे। उन्होंने लिखा कि– "रामचन्द्रिका में केशव ने राम को अवतार मानकर और खुद को उनका सच्चा भक्त बनाकर अपने को बिल्कुल बेजबान नही कर दिया है। उन्होंने तुलसीदास के मुकाबले में ज्यादा आजादी से काम लिया है और जहाँ कहीं रामचन्द्र या किसी दूसरे कैरेक्टर में उन्हें कोई दोष दिखाई पड़ा है तो उन्होंने उसे गुण बनाकर दिखाने की कोशिश की बल्कि स्पष्ट शब्दों में उस पर आपत्ति की है। तुलसीदास ने रावण के साथ अन्याय किया है और उसे एक मनस्वी, प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी राजा के पद से गिराकर घृणा का पात्र बना दिया है, हालाँकि उसे इस तरह से अपमानित करने के बाद भी वह रावण का कोई ऐसा आचरण न दिखा सके जो इस घृणा की पुष्टि करता। रावण ने अगर कोई पाप किया तो यह कि उसने रामचन्द्र को मनुष्येतर प्राणी समझकर उनके सामने सिर नहीं झुकाया।"9

साहित्य की सच्ची समालोचना जन–विवके से सम्भव है। दार्शनिक विचार उसको पुष्ट कर सकते हैं। तुलसी के तमाम प्रयासों के बावजूद जनता ने विभीषण को स्वीकार नहीं किया। इसी समझ के आधार पर प्रेमचन्द तमाम श्रद्धा के बावजूद तुलसी की कमियों की ओर संकेत करते हैं। यह परम्परा का विवेकपूर्ण मूल्यांकन है। इसमें न अन्ध श्रद्धा है और न अति–उत्साही आक्षेप।

तुलसी के अलावा किसी अन्य कवि ने भी विभीषण की खबर नही ली, लेकिन केशवदास ने उसकी आलोचना की। ऐसा वे अपनो सामाजिक परिस्थितियों के कारण कर पाये। प्रेमचन्द ने केशवदास के सामाजिक आधारों के आलोक में उनकी रचना का मूल्यांकन करते हुए लिखा–

"केशव एक राजा के दरबारी थे, शाही दरबारों के अदब–कायदे से परिचित, देशप्रेम का महत्व समझने वाले अतः उन्होंने रामचन्द्र के बड़े बेटे लव की जबान से विभीषण को खूब खरी–खरी सुनवाई है।"10

सन् 30 का साल भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का टर्निग प्वाइंट था। लम्बी शान्ति के बाद महात्मा गाँधी जी ने इसी वर्ष 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' का आरम्भ किया। 1925 में 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना हो चुकी थी। साम्यवादी विचार भारतीय युवाओं को आकर्षित कर रहे थे। प्रेमचन्द अपने प्रेमाश्रमों की सीमा पहचान रहे थे और गाँधी से उनका मोहभंग शुरू हो गया था। जब गाँधीजी ने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' की असफलता का सेहरा कार्यकर्ताओं पर डाला तो प्रेमचन्द ने उनकी तीखी आलोचना की। गाँधीजी ने कहा कि

कांग्रेसी नेताओं ने सत्याग्रह के सिद्धान्त को गलत तरीके से जनता तक पहुँचाया। प्रेमचन्द पूछते है कि जब स्वयं गाँधीजी आज भी सत्य के लिए प्रयोग ही कर रहे हैं तब उनके कार्यकर्ता इस विषय में पक्की समझ के कैसे हो सकते है और कार्यकर्ताओं की बुद्धि का अंदाजा नहीं लगा पाना भी तो गाँधी की ही असफलता है। 16 अप्रैल, 1934 के जागरण के संपादकीय में ठेलम–ठेला शीर्षक से प्रेमचन्द ने लिखा–

"अब यह मान लेना पड़ेगा कि जिस चीज को महात्मा जी भीतर की आवाज कहते है, जिसका मतलब यह होता है कि उसके गलत होने की सम्भावना नहीं वह बहुत भरोसे की चीज नहीं है क्योंकि उसने एक से ज्यादा अवसरों पर गलती की है। भविष्य में राजनीति को राष्ट्रहित की दृष्टि से देखना होगा।"

वे अपने लेखों द्वारा साम्यवादी विचारों के प्रति लोगों को जागरूक कर रहे थे और भारत की तात्कालीन परिस्थितियों पर मार्क्सवादी नजरिये से विचार कर रहे थे। उस समय प्रेमचन्द स्त्री–समस्या, किसान–समस्या धर्म के प्रति आलोचनात्मक रूख जमींदारों के प्रति कठोर रूख और भारत की सम्पूर्ण समस्याओं के वर्गगत आधारों की खोज मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में कर रहे थे।

चरित्र–हनन किसी राष्ट्र या व्यक्ति पर किया जाने वाला सबसे आसान लेकिन घातक हमला है। रूस के विरोधियों ने दुनिया भर में यह प्रचार कर दिया कि रूस में विवाह प्रथा उठ गयी है और वहाँ की सारी औरतों की स्थिति वेश्याओं जैसी हो गयी है। ऐसा लगता है जैसे विवाह– प्रथा के कारण ही स्त्रियाँ वेश्या बनने से बची रहीं और शोषण– मुक्त रहीं। आज भी कुछ लोगों को इस विषय में भ्रम है। परन्तु प्रेमचन्द स्त्री–समस्या की जड़ पहचानते थे वे जानते थे कि स्त्री–शोषण की जड़ स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता है और इसको बनाये रखने में विवाह जैसी संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने लिखा कि–"रूस नैतिक दृष्टि से पश्चिम की अन्य सभी उन्नत जातियों से आगे निकल गया है। वहाँ बाजारों में वेश्याएँ अपने शिकार की तलाश में चक्कर लगाती नहीं नजर आतीं, जैसा योरोप और अमेरिका के प्रायः सभी देशों में देखा जाता है। और इसका करण है वहाँ निर्मित हुई आर्थिक समानता और स्वाधीनता। उन्होंने लिखा–

"जहाँ धन थोड़े से आदमियों के हाथ में है, वहाँ लाजिमी है कि धनवान लोग अपनी विलासिता को तृप्त करने के लिए प्रलोभनों से काम लें। उसी से बीमारियाँ भी फैलती हैं। जब किसी के पास इतना धन ही न रहे कि वह उसे विलासिता में उड़ा सके, तो वेश्यावृत्ति आप ही–आप लुप्त हो जाएगी। फिर स्त्रियों के लिए जीवन के किसी भाग में कोई रूकवाट नहीं, तो वे क्यों इस लज्जास्पद वृत्ति का आश्रय लें।

प्रेमचन्द तत्कालीन भारत की समस्त समस्याओं का समाधान साम्यवाद की स्थापना में देख रहे थे। 28 मई, 1934 को जागरण के संपादकीय में कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन शीर्षक से उन्होंने लिखा–

"साम्यवादी विचार दिन–दिन बढ़ रहे है और कांग्रेस में चाहे पूरे साम्यवाद ज्यादा न हों, पर ऐसा शायद ही कोई हो, जो साम्यवाद को किसी–न–किसी अंश में स्वीकार न करता हो लेकिन साम्यवाद को वाद के रूप

में मानना दूसरी बात है और उसे अपने जीवन का भोग बना लेना दूसरी बात है।" जागरण के संपादकीय में 'हवा का रूख' शीर्षक के अन्तर्गत 29 जनवरी 1934 को उन्होंने लिखा–

"कम्युनिज्म अर्थात् साम्यवाद का विरोध वही तो करता है, जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन करना चाहता है। जो अपने को भी दूसरो के बराबर ही समझता है, जो अपने में कोई सुरखाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से क्यों विरोध होने लगा।"

वास्तव में प्रेमचन्द का साहित्य चिन्तन भारतीय काव्यशास्त्र के आध्यात्मवादी मानदण्डों और समाजवादी यथार्थवाद के नवीन वैज्ञानिक चिन्तन के द्वन्द्व से निर्मित हो रहा था। भारतीय आदर्शवादी चिन्तन यदि उनका संस्कार था तो समाजवादी यथार्थवाद उनकी प्रेरणा। धीरे–धीरे प्रेमचन्द समाजवादी यथार्थवाद की ओर बढ़ रहे थे जिसका प्रमाण 'गोदान' और 'कफन' तो है ही उनके कुछ अन्तिम साहित्यिक लेख भी है। उनको दृढ़ विश्वास हो गया था कि जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव–समाज का उद्धार नहीं हो सकता। इसलिए इसे नए सिरे से गिराकर उठाना होगा। इस सम्बन्ध में यदि कुछ लोगों को सन्देह या शंका है तो वह व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण। उस समय हिन्दी साहित्य में परम्परावदी विचारकों का बोलबाला था। वे साहित्य को मनोरंजन और भोग–विलास का साधन समझते थे। साहित्यिक संस्थाएँ भी उनके लिए धनार्जन और प्राचीन रचनाओं की तलाश का माध्यम थीं। समाज और साहित्यकारों को दिशा दिखाने वाली मूल दृष्टि इसके भीतर से गायब थी। प्रेमचन्द इस स्थिति से खिन्न थे। इसी कारण उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ का हृदय से स्वागत किया था। प्रेमचन्द रूसी साहित्य के प्रशंसक थे और वहाँ से उठने वाली हर एक आवाज का समर्थन करते थे। रूस में साहित्यिक प्रकाशनों में हो रही अभूतपूर्व वृद्धि से वे हर्षित थे और हिन्दी वालों को इससे सीखने की सलाह दे रहे थे। वे इस बात से प्रसन्न थे कि हिन्दी में रूसी साहित्य का प्रचार–प्रसार बढ़ रहा है–

"एक समय था कि हिन्दी में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। पर अब जनता की रूची बदल गई है और यद्यपि अब भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो चोरी छीना और डाके आदि के वृत्तान्तों में आनन्द पाते हैं लेकिन साहित्य की रूचि में कुछ परिष्कार हुआ है और रूसी साहित्य से लोगों को कुछ रूचि हुई है। पूँजीवादी यथार्थवाद यथार्थ के नाम पर मानव मन की कुत्सित भावनाओं के चित्रण पर बल देता है जबकि समाजवादी यथार्थवाद उसकी उदात्त भावनाओं पर। साहित्य की नई प्रवृत्ति नामक लेख में प्रेमचन्द ने पूँजीवादी साहित्य की जमकर आलोचना की। प्रेमचन्द ने स्पष्ट लिखा कि– यथार्थवाद का यह आशय नहीं है कि हम अपनी दृष्टि को अंधकार की ओर ही केन्द्रित करें।

साहित्य का उद्‌देश्य के सम्बन्ध में जब सोवियत लेखकों में आपसी सहमति नहीं बनी तो वे एक मजदूर के पास गये और पूछा–तुम साहित्य क्यों पढ़ते हो? उसने कहा–जीवन की सच्ची विधि जानने के लिए। इस जवाब से सोवियत लेखकों का विवाद खत्म हो गया और प्रेमचन्द को मन माँगी मुराद मिल गयी। इस घटना पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए प्रेमचन्द ने 'साहित्य में ऊँचे विचार की आवश्यकता' नामक लेख में लिखा– साहित्य

का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम–कदम पर आने वाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या ?"

वे साहित्य को जीवन की आलोचना मानते थे और ऊँचे और पवित्र विचार को साहित्य की जान मानते थे। उन्होंने लिखा– "साहित्य न चित्रण का नाम है न अच्छे शब्दों को चुनकर सजा देने का न अलंकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का। ऊँचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान है।"

इस प्रकार प्रेमचन्द का चिन्तन उस दिशा में बढ़ रहा था जहाँ से प्रगतिशील आलोचना की शुरूआत होनी थी। प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पूर्व ही उन आधारों की खोज कर दी थी जिस पर समाजवादी यथार्थवाद का महल खड़ा होना था। यह बहुत अफसोस की बात है कि प्रगतिशील लेखक संघ के आरम्भिक उन्नायकों ने प्रगतिशीलता की खोज के लिए विदेशी साहित्य की ओर सिर उठाये रखा लेकिन अपने बिल्कुल पास खड़े प्रेमचन्द की ओर नहीं देखा। रामविलास शर्मा ने लिखा–प्रगतिशील लेखक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर प्रेमचन्द के इस कार्य से अपरिचित थे। प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता की, उनकी समझ में इसका भी कोई विशेष महत्व न था। महत्व था लंदन में इन लोगों द्वारा 1935 में प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन के बीजारोपण का। न्यू इंडियन लिटरेचर (1939) पत्रिका में मुल्कराज का लेख छपा थ–ऑन द प्रोग्रेसिव राइटर्स मूवमेंट। इसमें लंदन वाले उस बीजारोपण का उल्लेख है, प्रेमचन्द का कहीं नाम भी नहीं है। उनके अध्यक्षीय भाषण को छापने का प्रश्न ही न था। मुल्कराज आनन्द ने अपने लेख में भारत की अन्य भाषाओं के लेखकों के नाम गिनाए हैं, इंग्लैण्ड के लेखकों की भी चर्चा की है परन्तु प्रेमचन्द का नाम उन्होंने नहीं लिया।"12

प्रेमचन्द ने प्रगतिशील साहित्य को केवल स्त्री–पुरूष–प्रेम तक सीमित रहने से रोका। केवल समस्याओं का चित्रण करने की जगह समाधान पर नजर रखने को भी कहा। सुन्दरता की कसौटी बदलने को कहा और साहित्यकारों को ज्ञान–विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से जुड़ने की बात की। दो और महत्त्वपूर्ण बात उन्होंने कही। पहली, साहित्य देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है और दूसरी, जिन्हें धन–वैभव प्यारा है, साहित्य मन्दिर में उसके लिए स्थान नहीं है। इस भाषण में प्रेमचन्द ने भारतीय लेखकों में कर्मशक्ति के अभाव की शिकायत की थी जो आगे चलकर प्रगतिशील लेखकों में सबसे अधिक दिखायी दी। प्रेमचन्द इन खतरों से अवगत थे इसीलिए उन्होंने भाशण के अन्त में कहा–

" हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सज्जन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।"13

प्रेमचन्द ने अपने लेखों द्वारा भरतेन्दु से चली आ रही सुधारवादी–आदर्शवादी परम्परा को प्रगतिवाद की

यथार्थवादी परम्परा से सचेत होकर मिलाया। प्रगतिशील आलोचना की नींव तैयार करने में उनकें लेखों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रगतिशील आलोचना में उठे आगामी तमाम सवालो के जबाव प्रेमचन्द के लेखन में विद्यमान थे। यादि प्रेमचन्द के कथा–साहित्य के साथ उनके आलोचनात्मक लेखन को मिलाकर देखा जाए तो समाजवादी यथार्थवाद की एक भरी–पूरी तस्वीर उभर कर सामने आती है।

सन्दर्भ :–

1. प्रेमचन्द के विचार भाग–3, सम्पादक–कान्तिप्रसाद शर्मा, पृ. 222;अनमोल साहित्य, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006।
2. वही; भाग–1 पृ. 295।
3. वही; पृ. 292।
4. वही; पृ. 42।
5. रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास',काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र.सं.–संवत, 1986, पृ. 290।
6. प्रेमचन्द–'प्रेमचन्द के विचार', भाग–1, सम्पादक– कान्तिप्रसाद शर्मा, पृ. 153।
7. वही; पृ. 155।
8. वही; पृ. 129।
9. वही; पृ. 185।
10. प्रेमचन्द–'प्रेमचन्द के विचार', भाग–1, सम्पादक–कान्तिप्रसाद शर्मा,
11. प्रेमचन्द–'प्रेमचन्द के विचार', भाग–3, सम्पादक–कान्तिप्रसाद शर्मा,
12. प्रेमचन्द–'प्रेमचन्द', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 152, पृ. 17।
13. प्रेमचन्द–'प्रेमचन्द के विचार', भाग–1 सम्पादक– कान्तिप्रसाद शर्मा, पृ. 384

अजय कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

राष्ट्रीय पी0जी0 कालेज

सुजानगंज, जौनपुर

मो0 : 9452961554

E - mail : ajay.dahev@gmail.com